है—जन्मना, बढ़ना, कुछ काल तक रहना, सन्ततिरूप परिणाम, क्षय और अन्त में विनाश। ये सब वास्तव में प्राकृत देह के विकार हैं। इसके विपरीत, वैकुण्ठ-जगत् में देह में कभी कोई विकार नहीं होता। वहाँ न जरा है, न जन्म है और न मृत्यु ही है। वहाँ सब कुछ एकावस्था में स्थित है। इसी भाव को अधिक स्पष्ट करने के लिए **सर्वाणि भूतानि** शब्दों का प्रयोग है। ब्रह्मा से लेकर तुच्छ चींटी तक जो कोई भी प्राणी जड़ प्रकृति के संसर्ग में है, उसका शरीर विकारी है; वह क्षर है, अर्थात् अपने स्वरूप से पतनमुखी है। परन्तु वैकुण्ठ-जगत् में ऐसा नहीं है। वहाँ पर सभी एकावस्था में मुक्त हैं।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।१७।।

उत्तमः=सबसे श्रेष्ठ; **पुरुषः**=पुरुष; **तु**=परन्तु; **अन्यः**=अन्य ही हैं; **परम्**=परमेश्वर; **आत्मा**=स्वयं; **इति**=इस प्रकार; **उदाहृतः**=कहा गया है; **यः**=जो; **लोकत्रयम्**=तीनों लोकों में; **आविश्य**=प्रवेश करके; **बिभर्ति**=धारण-पालन करते हैं; **अव्ययः**=अविनाशी; **ईश्वरः**=स्वामी।

अनुवाद

परन्तु इन दोनों से उत्तम पुरुष तो अविनाशी परमेश्वर ही हैं, जो इन सब लोकों में प्रवेश करके उनका धारण-पालन करते हैं।।१७।।

तात्पर्य

कठोपनिषद् और श्वेताश्वतरोपनिषद् में इस श्लोक का बड़ा सुन्दर निरूपण है। वहाँ से स्पष्ट है कि बद्ध और मुक्त—इन दोनों प्रकार के असंख्य जीवों से ऊपर एक परमपुरुष हैं, जो परमात्मा कहलाते हैं। उपरोक्त उपनिषदों का श्लोक इस प्रकार है—**नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्**। तात्पर्य यह है कि बद्ध-मुक्त, सब प्रकार के जीवों में एक परम चेतन पुरुष हैं, जिन्हें भगवान् कहा जाता है और जो उन्हें धारण करते हैं और कर्म के अनुसार फल भोगने की पूर्ण सुविधा भी देते हैं। वे श्रीभगवान् जीवमात्र के हृदय में परमात्मा रूप से स्थित हैं। जो बुद्धिमान् मनुष्य उन्हें जान जाता है, वही परम शान्ति को प्राप्त कर सकता है, अन्य कोई नहीं।

श्रीभगवान् और जीवों को सब प्रकार के समान मानना भूल होगी। उनमें स्वामी-सेवक का भेद सदा रहता है। इस सन्दर्भ में यहाँ **उत्तम** शब्द का प्रयोग बहुत महत्त्व का है। कोई जीव श्रीभगवान् की तुलना भी नहीं कर सकता, फिर उनसे उत्तम होने का तो प्रश्न ही नहीं बनता। **लोके** पद भी महत्त्व रखता है, क्योंकि 'पौरुष' नामक वैदिक ग्रन्थ में कथन है, **लोक्यते वेदार्थोऽनेन**। ये परमेश्वर अपने एकदेशीय परमात्मारूप में वेदों का अर्थ स्पष्ट करते हैं। वेदों में यह श्लोक भी है—

तावदेष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परम्।
ज्योतिरूपं सम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमः पुरुषः।।